International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1008-1010

प्रो0 सत्यप्रकाश मिश्र का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अमरेश कुमार सिंह
वरिष्ठ शोध छात्र, हिंदी विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

सुल्तानपुर के एक छोटे से कस्बे दोस्तपुर में सत्यप्रकाश जी का जन्म हुआ। पिता दुर्गाप्रसाद मिश्र 'शास्त्री' और माता विमला देवी बहुत गरीब थे। खेती भी बहुत ज्यादा नहीं थी। दिन–रात मेहनत करके दो वक्त की रोटी जुटा लेते थे। सत्यप्रकाश जी पैदा हुए और उधर माँ बीमार हो गयीं। बिना माँ के दूध के बच्चा कैसे पले। लोग बताते थे कि गाँव भर की औरतों ने उनको दूध पिलाया। उन्हीं के बीच वे पले और बड़े हुए। इस तरह गांव भर की औरतें उनकी माँ हो गयीं, इस रिश्ते को उन्होंने जीवन भर निभाया। गाँव में उनकी पढ़ाई–लिखाई शुरू हुई। पिता की इलाके में धाक थी। वे पंडित थे तो उनके पास आने–जाने वालों का ताँता लगा रहता। बालक सत्यप्रकाश की आँखों के सामने यह सब उमड़ता–घुमड़ता। पंडित जी का बेटा गाँव का बेटा था। माँ गांव की औरतें माँ तो हो ही गयीं थीं। घर में सत्यप्रकाश जी को गरूड़ नाम से जाना जाता था, वे पढ़ने में शुरू से ही कुशाग्र थे। दिन में पढ़ाई करने चले जाते और बचे समय में खेत। बचपन से मेहनत शरीर में चढ़ गयी। पसीने से प्यार हो गया। पढ़ना, घर का काम और मस्त रहना जिन्दगी का स्वभाव बन गया। जैसे–तैसे गाँव में रहकर आठवीं की परीक्षा पास की। आगे की पढ़ाई क लिए दूसरे गाँव छीटेपट्टी जाना हुआ। पैदल जाते थे, वहाँ इण्टरमीडिएट तक की पढ़ाई हुई। पिता चाहते थे कि वे अध्यापक बन जायें, लेकिन सत्यप्रकाश जी की दिलचस्पी आगे पढ़ने में थी। जैसे–जैसे पिता की इच्छा के खिलाफ इलाहाबाद चले आये पिता चाहते थे एक ही बेटा है, पास में रहे। सात बेटियाँ हैं, उनकी शादियों का खर्चा सँभालना कठिन होगा, इसलिए न जाए पर सत्यप्रकाश जी ने जिद की। अपने भरोसे गाँव छोड़ दिया। सत्यप्रकाश जी इलाहाबाद आये और यहाँ इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एडमिशन हो गया। ट्यूशन करके खर्चा निकालना शुरू कर दिया। किसी को विश्वास नहीं होगा, सत्यप्रकाश जी ने पहली बार चप्पल तब पहनी, जब उन्हें बी0ए0 में वजीफा मिला। उसी समय उनका विवाह हो गया तो एक और जिम्मेदारी आ गयी। वे जानते थे कि उनकी सात बहनें हैं, जिनकी शादी होनी है। संयोगवश पत्नी ऐसी मिली जो घर समाज की सीमाएँ जानती थी। वे हर परिस्थिति में पति का साथ दे रही थीं। पत्नी एक घटना सुनाती हैं कि सत्यप्रकाश जी को पीएच.डी. की थीसिस जमा करनी थी। टाइप कराने के पैसे नहीं थे। गाँव में किसी से उधार माँगा परन्तु पर्याप्त पैसे नहीं मिले। पत्नी ने अपने गहने बेच दिये। इस प्रकार थीसिस जमा हुई। पीएच.डी. की डिग्री मिली। जगदीश गुप्त, डॉ0 रघुवंश और रामस्वरूप चतुर्वेदी के वे प्रिय शिष्य थे। बहनों की शादी के लिए अखबारों में लेख लिखकर ट्यूशन करके तथा वजीफा के पैसे बचाकर तैयारी की। उस वक्त वे मधवापुर इलाहाबाद में रहते थे। जहाँ पर उनकी मुलाकात लक्ष्मीकान्त वर्मा से हुई। यहीं से उनके जीवन में नया मोड़ आया। लिखने–पढ़ने की आदत पड़ी। खूब मेहनत करते। संघर्षशील तो थे ही संघर्षशीलता से उनको नयी दिशा मिली। धीरे–धीरे साहित्य के क्षेत्र में पहचान बनाने लगे। जिन्दगी कुछ व्यवस्थित हुई। अपनी मेहनत और आगे बढ़ने की महत्त्वाकांक्षा के दम पर ही आज वह इस मुकाम पर पहुचे और उसमें पत्नी का बहुत योगदान रहा। घर गृहस्थी का सारा काम सारी जिम्मेदारियाँ पत्नी के ऊपर। छः बहनों की शादी होते–होते बच्चों की जिम्मेदारी आ गयी। उनका पालन–पोषण करने लगे।

उन्हें 1992 में जापान जाने का निमंत्रण मिला। विजिटंग प्रोफेसर के रूप में पर वहाँ उनका मन नहीं लगा। माँ–बाप की इतनी चिन्ता रही कि एक महीने के भीतर ही वापस आ गये। पिता की बीमारी का बहाना बना लिया और वापस। वे हमेशा कहते थे कि बाबू को कुछ हो जायेगा तो मैं उनके अंतिम दर्शन भी नहीं कर पाऊँगा। इसी तरह जर्मनी जाने का अवसर मिला। वहाँ भी जाते–जाते इनकार कर दिया बोले– मन नहीं करता।'' वे कहीं रहे, माता–पिता की चिन्ता करते रहते थे। सत्यप्रकाश जी कई संस्थाओं से जुड़े। विश्वविद्यालय के अलावा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद संग्रहालय इत्यादि। सभी जगह अपनी मेहनत व लगन से उनके उत्थान के लिए काम किया। वहाँ पर रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नीलाभ, रामकमल राय, मार्कण्डेय, दूधनाथ और बहुत से लोग इकट्ठे होते थे। यही उनका परिवार था जो आजीवन रहा। धीरे–धीरे उनका कॉफी हाउस जाना तभी कम हुआ जब ल लोग बिखरने लगे या बिछुड़ने लगे। रामकमल चाचा की मृत्यु के बाद पापा का कहना था कि राय साहब का साथ छूटा और मेरी आवाज ने मेरा साथ छोड़ा लगभग दोनों बाते एक साथ हुईं। विभूति मिश्र, गंगा सागर तिवारी, एम0पी0 तिवारी, हरिनारायण दुबे, चन्द्रप्रकाश पाण्डे जिन पर सत्यप्रकाश जी को बहुत विश्वास था और वे लोग उनके सुख–दुख के क्षणों में हमेशा उनके साथ रहे।

'व्यक्ति के नाम का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता हैं' और 'यथानाम तथा गुणः' का सूत्र तो बहुतों से सुना था पर गाँव के नाम का प्रभाव भी व्यक्ति पर पड़ता है, यह सत्य 'सत्यप्रकाश जी' में ही प्रकाशित हुआ था। आज उनका परिचित शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह कह सके कि वे उसे औरों की तुलना में कम महत्व देते थे जो भी उनसे हो सकता था, वे सबके लिए करते थे। लोहियावादी सोशलिस्ट पार्टी से उनका पुराना संबंध था। इसीलिए पुराने सोशलिस्टों के गुण तेजी, साफगोई, दो टूकपन, निर्भीकता, साहस, मुखरता आदि उसमें सहज रूप में थे। लोहियावादियों जैसे विजय देवनारायण साही, रघुवंश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, रामकमल राय, जनेश्वर मिश्र आदि से उनका गुरू शिष्य और मित्र–संबंध था।

सत्य प्रकाश जी एक प्रखर वक्ता थे। पूरी तैयारी और आँकड़ों के साथ बोलते थे। उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य आधुनिक चिंतन दोनों का अध्ययन किया था। कभी–कभी तो ऐसा लगता था जैसे वे इंटरनेट पर सूचना–सामग्री लेते हों। अध्ययन के

साथ उनकी स्मृति भी अच्छी थी। इसीलिए गोष्ठियों का संचालन वे पूरे आत्मविश्वास के साथ करते थे। अपने समय में इलाहाबाद की लगभग सभी साहित्यिक गोष्ठियों का संचालन वे ही करते थे और धीरे–धीरे इलाहाबाद के साहित्यिक परिदृश्य पर छा गये थे। वे विश्वविद्यालय में तो हिन्दी विभागाध्यक्ष थे ही, हिन्दी साहित्य–सम्मेलन के साहित्यमंत्री भी और इलाहाबाद संग्रहालय से भी विशिष्ट रूप में सम्बद्ध रहे। तीनों संस्थाओं में जो भी आयोजन होते सब उन्हीं के द्वारा संचालित होते। दूर–दूर से साहित्यकार मित्र उन्हीं के अनुरोध पर पहुँचते। इन तीनों संस्थाओं को उनकी सक्रियता ने साहित्य दृष्टि से अति महत्वपूर्ण बना दिया था। एक साहित्यकार कहते थे कि ''इलाहाबाद की सभी तोपें दग चुकी हैं। सत्यप्रकाश मिश्र इलाहाबाद की आखिरी तोप है।'' सचमुच रानी लक्ष्मीबाई के 'कड़क बिजली' तोप जैसी ही उनमें ऊर्जा थी। सत्यप्रकाश जी मूलतः अध्यापक नहीं, लेखक थे। इसीलिए जिस–जिस संस्था से वे जुड़े वहाँ से अध्यापकों का दबदबा कम हुआ और लेखकों की उपस्थिति बढ़ती गयी। स्वयं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में भी ऐसा ही हुआ। व्यास सम्मान के आयोजन में भी उन्होंने ऐसी ही सूझ–बूझ से काम लिया। सत्यप्रकाश जी को साहित्य की धड़कन का ठीक–ठीक पता था। साहित्यकारों की उनकी पहचान भी बहुत सूक्ष्म थी। एक बार रेवतीरमण ने मुझसे कहा कि सत्यप्रकाश जी ने पहली बार नये आलोचकों में उनका उल्लेख किया है। मैं भी रेवतीरमण को अपने समय में लिखे जा रहे साहित्य का एक सहृदय आलोचक मानता हूँ। इस संदर्भ में सबसे बड़ी बात यह कि सत्यप्रकाश जी ने अपने को किसी लेखक गुट के साथ सम्बद्ध नहीं किया। वे सभी गुटों, साहित्य की राजनीतिक विचारधाराओं और परस्पर विरोधी व्यक्तियों में संतुलन बनाते हुए आगे बढ़े। वे सबके प्रिय थे, सबके मित्र। गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, विद्यानिवास मिश्र, निर्मल वर्मा, विष्णुकान्त शास्त्री, नामवर सिंह, आशोक वाजपेयी, रमेशचन्द्र शाह, गोविन्द मिश्र, यशदेव शल्य, मैनेजर पाण्डेय, वागीश शुक्ल, गिरिराज किशोर, कृष्णदत्त पालीवाल, विश्वनाथ त्रिपाठी, विजयबहादुर सिंह, दूधनाथ सिंह, मार्कण्डेय सबके साथ उनका व्यवहार सहज ढंग से हो जाया करता था। इससे अधिक 'विरूद्धों का सामंजस्य' कम लोगों में दिखेगा। यह एक दुर्लभ विशेषता है, जो उनमें थी।

सत्य प्रकाश जी के कृतित्व और विवेक का सही मूल्यांकन उनके कुछ लेखों, भाषणों या सम्पादकीय और पुस्तकों से करना कठिन और अन्यायसंगत है। 'माध्यम' और 'चेतना' की सम्पादकीयों से गुजरते हुए उनके बहुआयामी चिन्तन और सजग मनीषा का संकेत प्राप्त होता है। अक्टूबर–दिसम्बर 2006 के सम्पादकीय में 'हिन्दी–दिवस' की जगह 'भाषा–दिवस' मनाने की उन्होंने वकालत की है और यह बात उन्होंने एक भाषा–वैज्ञानिक की तरह चिन्ता करते हुए कही है कि– ''हिन्दी–दिवस को तो अब भाषा–दिवस होना चाहिए ताकि भाषाएं मिलकर अपने अस्तित्व के लिए साम्राज्यवाद की प्रतीक अंग्रेजी से संघर्ष कर सकें।'' उनके सम्पूर्ण वक्तत्यों और रचनाओं के अध्ययन से उनके कृतित्व और व्यक्तित्व का सही मूल्यांकन कृतज्ञ हिन्दी समाज अवश्य करेगा। अभी उनके विषय में जो कुछ भी कहा जा रहा है वह उनके मनीषा का कुछ अंशमात्र भी है। उनके द्वारा रचित सम्पादित ग्रन्थों की सूची निम्नवत है–

1. रीति काव्य : प्रकृति, स्वरूप, 2. कवि शिक्षा की परम्परा, 3. आलोचना और समीक्षाएँ, 4. बालकृष्ण भट्टः प्रतिनिधि संकलन, 5 मध्यकालीन काव्य आन्दोलन, 6. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी पत्रकारिता, 7. गोदान का मूल्य, 8. काव्य भाषा पर तीन निबंध, 9. सृजन और परिवेश, 10 साहित्य कोष में टिप्पणियाँ।

विरूद्धों का सामंजस्य बिठाने की उनमें अद्भुत कला थी। उनमें मानद निदेशक होने के पूर्व कुछ वामपंथी साहित्यकार प्रो0 पाण्डेय के खिलाफ थोड़ा बहुत विरोध का स्वर अलापने लगे थे, कुछ लोगों ने सुना कि सरकारी पैसे का खूब अनाप–सनाप दुरूपयोग हो रहा है। सत्यप्रकाश जी जब मानद निदेशक हो गए तो उन्होंने अवसरानुकूल सबको स्थान दिया, सभी गद्गद् रहे। यदि कोई नाखुश रहा होगा तो उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह कोई शिकायत कर सके। एक बार समकालीन कविता का वाचन हो रहा था। कुछ कवियों को शिकायत थी कि सम्मिलित नहीं किया गया। सत्यप्रकाश जी के पास इसकी भनक पहुँच गयी। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि उन्होंने उन्हीं कवियों को अवसर दिया दिया है जिन्हें वे कवि मानते हैं। हर साहित्यकार अपने को अपने को एक दूसरे से कम नहीं मानता। कभी–कभी लोग एक दूसरे को ढाल के रूप में प्रयोग करते थे। कवि प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' किसी गोष्ठी में खुद बोलने की इच्छा रखते थे। उन्होंने एक विद्वान से कई बार पूछा कि आप बोलेंगे? उन्होंने कहा, 'नहीं', मुझसे तो कहा नहीं गया है। सीधे सत्यप्रकाश जी के पास जाकर उन्होंने कहा कि कुछ 'लोग' और भी हैं, उनको भी आप वक्ताओं में सम्मिलित करें तो अच्छा होगा। सत्यप्रकाश जी ने पूछा कि वे कुछ लोग कौन हैं। कवि महोदय संकोच या भय से अपना नाम नहीं बता सके, उन्होंने एक कवि का नाम ले लिया। द्वितीय सत्र की गोष्ठी शुरू होने जा रही थी। प्रायः सभी लोग संग्रहालय के गोष्ठी कक्ष में बैठ गए थे। सत्यप्रकाश जी ने पीछे से गुजरते हुए कवि की पीठ को छूकर कहा कि तुम्हें भी बोलना है। गोष्ठी की समाप्ति के बाद उस कवि ने स्पष्टीकरण दिया कि मैंने कवि महोदय से अपनी सिफारिश के लिए बिल्कुल नहीं कहा था। उन्होंने कहा कि मैं समझ रहा था, वे अपनी सिफारिश करना चाहते थे लेकिन मेरे पूछने की आवाज कुछ ऐसी थी कि वे सकपका कर तुम्हारा नाम ले बैठे।

सत्यप्रकाश जी एक कुशल संगठनकर्त्ता और आयोजक थे। जिस भी संस्था को छू दिया, उसमें नई जान आ गई। 'सम्मेलन' और 'संग्रहालय' इसके प्रमाण हैं। उन्होंने 'माध्यम' को फिर से जीवन देकर सहित्य का जो कल्याण किया, इतिहास उसका साक्षी रहेगा। 'तारसप्तक' के प्रकाशन की स्वर्णजयन्ती पर 'संग्रहालय' में आयोजित संगोष्ठी इलाहाबाद की स्मरणीय संगोष्ठियों में एक है। 'आरम्भ शूर' अशोक वाजपेयी ने तो इसकी योजना बना दी थी, पर रामस्वरूप चतुर्वेदी आदि के सहयोग से उसे पूर्णता दी थी सत्यप्रकाश जी ने। बाद में इस संगोष्ठी में पढ़े गये आलेखों को प्रकाशित भी कराया गया। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उन्होंने एक नई रंगत भरी। बाहर से जाने वालों ने तो इसे नोट किया ही, भीतर के लोग भी इसकी चर्चा करते हुए थकते नहीं हैं। प्रो0 राजेन्द्र कुमार जी सत्यप्रकाश जी की निष्ठा के बारे में कहते है– ''हर विभाग में एक कुर्सी होती है, जिसे अध्यक्ष की कुर्सी कहते हैं। लेकिन हर विभाग में ऐसा अध्यक्ष नहीं होता, जिसे सत्यप्रकाश मिश्र कहा जा सके।''

प्रख्यात आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी के काव्यभाषा पर तीन निबंध' (1989) में डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्र की लगभग चालीस–बयालिस पृष्ठ लंबी, सघन, श्रमसाध्य प्रस्तावना लिखी। काव्यभाषा, कथाभाषा और नाट्यभाषा उत्सुकता का विषय था ही– खास तौर से रंगभाषा पर लिखते समय इसे दो तीन बार पढ़ा। बड़ी लंबी, एक लघु पुस्तक जैसी, गहन अध्ययन की, भारतीय और पाश्चात्य अवधारणाओं को लेकर चलती हुयी यह जटिल पर महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना है जिसमें जगह–जगह डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्र की दृष्टि, उनका चिंतन ऐतिहासिक संदर्भ में उभरता मिलता है। साहित्यिक, भाषा वैज्ञानिक, सांस्कृतिक और भी बहुत सारे सवालों के साथ इस बात को महत्त्व

देते हुए कि 'अनुभव–केन्द्रित संरचना में भाषा के विविध स्तरों का प्रयोग होता है', वह कहते हैं 'उपन्यास में संश्लिष्ट अनुभवों की अभिव्यक्ति के लिए, उदाहरण के लिए किसी पात्र की जटिल मनोदशा की अभिव्यक्ति के लिए और यथार्थ की जटिलता को संदर्भ प्रदान करने के लिए दृश्यों का नियोजन, चित्रात्मकता और व्यापक संदर्भमयता होती है इस प्रकार के प्रयोग को काव्यभाषा का प्रयोग कहा जा सकता है। 'शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'मैला आंचल', लाल टीन की छत', 'बर्फ गिर चुकने के बाद' आदि ऐसे ही प्रयोग हैं जिनमें उपन्यासों के कई अंश अर्थगर्भित हैं। नाटकों की भाषा हरकत की भाषा होती है। इसमें शब्दों में अभिनय के माध्यम से अर्थ भरा जाता है। इसमें अर्थ का विभाजन अभिनय द्वारा होता है। शब्द और अभिनय में एक प्रकार की धक्का–मुक्की भी हो सकती है। शब्दों का यह क्रिया–वैचित्र्य भाषिक रचनात्मकता की दूसरी विशेषता है। दूसरे इसमें श्रोता और दर्शक होते हैं, इसलिए संप्रेषण की समस्या भिन्न है। कहानी के संदर्भ में भी स्थिति यही है। चूँकि यह विधा कथा–विन्यास की दृष्टि से एक संरचना है इसलिए अनुभव के किसी घनीभूत क्षण को संदर्भ सहित प्रस्तुत करते की दृष्टि से कहानी में कहने, दिखाने, बताने और प्रतीत कराने के कई रूप एक साथ संग्रथित होकर ही निर्मित का कारण बनते हैं। किसी भी विधा में भाषा की संभावनाओं को निचोड़कर ही संक्षिप्त परंतु अधिक अर्थगर्भित और प्रभावकारी क्षमता पैदा की जा सकती है। '..... काव्यभाषा तकनीक के रूप में नहीं बल्कि संप्रेषण के दबाव रूप में हर प्रकार की विधा में रहती है।' यहाँ डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्र ने रामस्वरूप चतुर्वेदी की तरह काव्यभाषा, नाटक की भाषा और कथाभाषा का अंतर स्पष्ट किया है। हर विधा की भाषा विभिन्न स्तरों के उपयोग से बनती है, काव्य की भी। यह सही है कि गद्य का रिश्ता विचार, तार्किकता से है, व्याकरण–विन्यास वहाँ जरूरी है पर जब वह यह कहते हैं कि नाट्यभाषा भी विन्यास के भाषिक ढाँचे को कई–कई तरह से तोड़ती है। वहाँ सिर्फ वाक्य ही तो नहीं है, व्याकरण भी नहीं। गद्य की प्रकृति ही वहाँ बदल जाती है।

इस प्रकार डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्र की चीजें बिखरी हुयी हैं किन्तु उनकी अध्ययनशीलता, विद्वता और सजगता, उनकी सक्रियता सबको प्रभावित करती है। रामविलास शर्मा, विजयदेव नारायण साही, नामवर सिंह पर उनके लेख बहुचर्चित हुए। निश्चय ही सभी फुटकर लेखों से डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्र के विवेक, उनके बौद्धिक चिंतन की पूरी जानकारी मिलती है और इस बात का अनुभव भी कि वह सार्वकालिकता में विश्वास करते थे, मार्क्सवादी सोच, संघर्ष, यथार्थ के साथ वह किसी भी रचनाकार के रागबद्ध संसार को पहचानते थे।

संदर्भ

1. काव्य भाषा पर तीन निबन्ध रामस्वरूप चतुर्वेदी : संपादक– डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
2. प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य : संपादक– डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
3. माध्यम (अप्रैल–जून 2007) : संपादक– डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र
4. सम्मेलन पत्रिका (शोध–त्रैमासिक) भाग–18 संख्या–1 : संपादक– विभूति मिश्र
5. सम्मेलन पत्रिका (शोध–त्रैमासिक) भाग–18 संख्या–2 : संपादक– विभूति मिश्र
6. कृति विकृति संस्कृति लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद : प्रो0 सत्यप्रकाश मिश्र
7. सम्मेलन पत्रिका (शोध–त्रैमासिक) भाग–18 संख्या–3 : संपादक– विभूति मिश्र